हम मोटली माई के लोग

जनसत्ता नई दिल्ली, 22 मार्च 1994

आदरणीय दिग्गी राजा,

हम झाबुआ जिले की अलीराजपुर तहसील के जलसिंधी गांव के आदिवासी आज आपको, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री को यह पत्र लिख रहे हैं।

हम नदी किनारे के बाशिंदे हैं, विशाल नर्मदा के तट पर रहते हैं हम। इस साल सरदार सरोवर बांध से मध्यप्रदेश का डूबने वाला पहला गांव है – हमारा जलसिंधी। साथ में कई और गांव – सरकजा, काकड़सीला, आकड़िया आदि भी डूबने वाले हैं। इसके चलते हमारे जंगल आदि भी डूबने वाले हैं। इसके चलते हमारे जंगल कट रहे हैं, रोड बन रही है। वैसे तो हम बरसात में डूबते, लेकिन गुजरात सरकार बांध के दरवाजे (जल-द्वार) अभी से बंद कर रही है – इसलिए हम सब गर्मी में ही डूब जाएंगे। इतने दिन से आप सुन रहे हैं कि महाराष्ट्र के मणीबेली और गुजरात के बड़गांव के लोग डूबने के लिए तैयार हैं। ऐसे ही इस साल मध्यप्रदेश में सरदार सरोवर की पहली डूब में हम भी अपनी जिंदगी समर्पित करने वाले हैं – लेकिन अपने गांव से हटेंगे नहीं। हमारे गांव में पानी आएगा, घर और खेत डूबेंगे तो इनके साथ हम भी डूब जाएंगे, यह हमारा पक्का इरादा है।

सरकारी और तमाम शहरी लोग मानते हैं कि हम जंगल में रहने वाले, गरीब-गुरबा, पिछड़े और बंदरों की तरह बसर करने वाले लोग हैं। आप लोग हमें समझाते रहते हैं कि तुम लोग गुजरात की मैदानी जमीन पर जाओ – वहां तुम्हारा भला हो जाएगा, तुम्हारा विकास हो जाएगा। पर हम आठ साल से लड़ रहे हैं, लाठी-गोली झेल रहे हैं – कई बार जेल जा चुके हैं – आंजनवाड़ा गांव में पुलिस ने पिछले साल गोलीबारी भी कर दी थी, हमारे घर-बार तोड़ दिए थे। लेकिन हम लोग – 'मर जाएंगे पर हटेंगे नहीं' का नारा लगाते हुए आज भी उसी जगह पर बैठे हुए हैं। क्यों? सरकार हमें उजाड़ने के लिए पैसा भी लगा रही है और डंडे भी मार रही है। फिर भी हम 'नहीं हटेंगे' कह कर इतनी ताकत क्यों लगा रहे हैं? अगर गुजरात में हमारा भला होने की बात सच होती तो अभी भी इतने सारे लोग गुजरात जाने के लिए तैयार क्यों नहीं हैं?

आप सरकारी और शहरी लोगों को हमारा इलाका सिर्फ पहाड़ी ही दिखाई देता है, लेकिन नर्मदा माता के तट पर जंगल व जमीनों के साथ हम लोग इसी पहाड़ी इलाके में सुख से जी रहे हैं। इसी इलाके में हमारी पीढ़ियां भी जीती रही हैं। बरसों पहले हमारे पूर्वजों ने जंगलों को साफ करके, देवी-देवताओं का आवहान करके, जमीन को सुधार कर और जंगली जानवरों का खतरा मोल लेते हुए गांव का बसाया था। इन्हीं जमीनों पर आज हम लोग खेती कर रहे हैं।

आप सोचते हैं कि हम गरीब हैं। हम गरीब नहीं हैं – मिल-जुलकर अपने घरों को बांधकर हम यहां बसे हुए हैं। हम किसान हैं। हमारे यहां अच्छी फसलें पकती हैं। धरती माता पर हल चला कर हम फसल पकाते हैं। बरसात में मेघ पानी देते हैं – उससे हम कमाई करके जीते हैं। कन्हर (जुवार) माता पकाती है। हमारी कुछ जमीन पट्टे की है, और बाकी 'मेवाड़' (विवादित जंगल जमीन) है। इन जमीनों में हम बाजरा, जुआर, मक्का, भादी, भट्टी, सांवा, कुद्री, चना, मोठ, उड़द, तुवर, तिल, मूंगफली आदि सभी उगाते हैं। हमारे यहां तरह-तरह की फसलें हैं। इन्हें हम बदल-बदलकर खाते हैं। इससे भोजन स्वादिष्ट भी लगता है और इसके दूसरे फायदे भी हैं। बरसात आते-आते हमारा अन्न खत्म हो जाता है। खाने की बहुत कठिनाई होती है। तब भादी-भट्टी सरीखी फसलें हम दो महीने में ही पका लेते हैं – इससे हमें खाने को मिल जाता है। बाकी फसलें तीन फसलें तीन-चार महीनों में पकें तो भी हमारी गुजर हो जाती है।

गुजरात में क्या पकता है? गेहूं और दादरा जुआर (जाड़े की जुआर), तुअर और थोड़ा-बहुत कपास। ये फसलें खाने की कम, बेंचने की ज्यादा होती हैं। हम तो खाने के लिए ही उगाते हैं। यदि उससे अधिक मिलता है तो ही कपड़े-लत्ते खरीदने के लिए हम बेंचते हैं। बाजार की कीमतें कम हों या ज्यादा, हमें खाने को मिल ही जाता है।

हम कई तरह के अन्न पका लेते हैं - पर सब अपनी मेहनत से ही। पैसे का क्या काम? घर के बीज उपयोग करते हैं, जानवरों का गोबर डालते हैं और इसी से हमारी फसलें अच्छी हो जाती हैं। गुजरात में तो जमीनों का व्यसन हो गया है। संकर बीज, 'सरकारी' (रासायनिक) खाद व 'सरकारी' दवाईयों के बिना वहां अन्न पकता ही नहीं है। इन सब के लिए बहुत से पैसे चाहिए। इतने पैसे हम कहां से लाएं? वहां हमें कौन पहचानता है, कौन साहूकार पैसा देगा? यदि फसल अच्छी नहीं होगी और पैसा भी हाथ में नही होगा-तो खेती कैसे होगी? जमीन गिरवी रखनी पड़ेगी।

यहां खुद्री-नाले (छोटी नदियां) से 'पाट' (नहर) काटकर हम दूर-दूर से पानी लाकर सिंचाई करते हैं। बचे हुए खेतों में सिर्फ बरसात में ही खेती करते हैं। जमीन में नमी रह जाए तो जाड़े में चना-गेहूं भी बो देते हैं। नदी के तट पर ही तो रहते हैं हम। यदि यहां बिजली होती, तो हम भी 'बड़ी-नदी' (नर्मदा) का पानी उठाकर जाड़े में फसल पका सकते थे। 'साहबों' (अंग्रेजों) का राज गए चालीस-पचास साल हो गए लेकिन आज तक नदी किनारे के गांव में बिजली नहीं पहुंची - न उजाले के लिए और न ही नदी का पानी उठा कर सिंचाई करने के लिए।

यह तो हमारी खेती की बात हुई। लेकिन हम तो पहाड़ के लोग हैं। नदी तट के निवासी हैं। हमारे पास साल भर गर्मी और जाड़े में भी बहता हुआ पानी है, पहाड़ पर बेहतरीन चारा है। हम सिर्फ फसलों के भरोसे नहीं जीते, हमारा जीवन जानवरों पर भी आश्रित है। हम मुर्गी, बकरी, गाय, भैंस सभी पालते हैं। किसी के पास दो-चार भैसें होती हैं, तो किसी के पास आठ-दस। बीस-चालीस-साठ, बकरियां तो सभी के पास होती हैं और मुर्गियां की तो गिनती ही नहीं। हम अपने जानवरों को पालते ही हैं - सगे-संबंधियों और दूर-दराज के साथी ग्रामीणों के जानवरों की देखभाल भी करते हैं। गुजरात तक के लोग हमारे पहाड़ों में अपने जानवरों को चराई के लिए लाते हैं। इतनी अच्छी है, हमारे चारे-पानी की व्यवस्था। जानवरों और दूध-घी बेंचकर हमारा एक-एक परिवार सालाना तीन-चार हजार रुपए कमा लेता है, कोई-कोई छह-सात हजार और कुछ लोग तो आठ-दस हजार तक कमा लेते हैं। आज यदि हम पर कोई आपदा टूट पड़े तो पैसे की जरूरत हो, तो हाट में एक बकरी बेंचने से पांच-छह सौ रुपए तुरंत हाथ में आ जाते हैं। तुअर, तिल और मूंगफली बेचने से जो आय होती है, उससे अधिक तो हमें जानवरों से मिल जाती है। झाबुआ जिले के बहुत से लोग हर साल जाड़े में, दाल-रोटी की खातिर सूरत-नवसारी आदि शहरों में मजदूरी के लिए जाते हैं, लेकिन हम नदी किनारे के लोग मजदूरी के लिए कहीं नहीं जाते। फसल कम पड़े तो जानवर बेच कर काम चला लेते हैं। सरकार लोगों को गुजरात ले जा रही है, जमीन भी दे रही है, लेकिन वहां चारागाह की जमीन नहीं देती। वहां चारे की बहुत समस्या है। घास-पत्ते कुछ भी नही हैं। लोग सिर्फ एक-जोड़ी बैल रखते हैं। उन्हें खेत की मेड़ पर चराते या फिर जुआर का भूसा खिलाते हैं। यदि आज हमारा बैल मर जाता है- तो गाय माता हमें दूसरा बैल दे देती है। लेकिन गुजरात में गाय कैसे रखेंगे? नया बैल मोल देकर लेना पड़ेगा। पैसा नहीं होता तो पाटीदार का बैल लेंगे और हमारी कमाई का हिस्सा उन्हें देना पड़ेगा। अपनी ही जमीन पर हम खुद मजदूर बन जाएंगे।

पीढ़ियों से हम जंगलों में रहते आए हैं। जंगल ही हमारा साहूकार और बैक है। संकट के दिनों में हम उसी के पास जाते हैं। जंगल और बांस से हम अपना घर बांधते हैं। निगौड़ी और हयाली की झाड़ियों से हम अपने घर की दीवारों को बुनते हैं। जंगल से ही हमारे घरों की टोकनी, खाट, हल, बक्खर और हर एक सामान बनता है। जंगल-पहाड़ में चारा मिलता है जिससे हमारे जानवर पुसते हैं। तरह-तरह का चारा मिलता है। गर्मी में घास सूख जाती है। हर झाड़ पर पत्तियां तो रहती हैं।

झाड़ के पत्ते हम भी खाते हैं। हेगवा की भाजी, मुरवा की भाजी, आमली की भाजी, गोइंदी की भाजी, फाज की भाजी - कितनी तरह की भाजियां खाते हैं हम। अकाल पड़ता है तो कंद-मूल खाकर जीते हैं। बीमार हो जाते हैं तो गांव के बुढ़वा जंगल की जड़ी-बूटी देकर ठीक कर देते हैं। जंगल से गोंद, तेंदू पत्ते, बहेड़ा, चिरौंजी, महुआ, डोली आदि बीनकर हम बेंचते हैं, जिससे गर्मी में हमारी आमदनी होती है। जंगल हमारी मां की तरह है। इसकी गोद में हम बड़े हुए हैं। इसका दूध पीकर हमें जीना आता है। इसके एक-एक झाड़-पत्ती-कंद का नाम और उसके उपयोग हमें मालूम हैं। बिना जंगल के देश में रहना पड़े तो यह पूरी जानकारी, जिसे हम पीढ़ियों से संजो कर रखे हैं, उपयोग नहीं होगी और धीरे-धीरे बिसर जाएगी। जंगल से दूर मैदानी इलाकों या शहरों में हम किस तरह से जी पाएंगे? धरती माता जब से गढ़ी-गुंथी है तब से हमारे पूर्वजों ने बिजली नहीं देखी। हम तो पहाड़ से लकड़ी लाकर उजाला कर देते हैं। सूखी लकड़ी लाकर हमारी औरतें रोटी-राबड़ी रांधती हैं। गुजरात में गोबर के कंडे या फिर जुआर का भूसा जलाकर रांधना पड़ता है। रोटी पकाना भी वहां बड़ी समस्या है। यहां हमारा जंगल तो हमारी गोदड़ी कहलाता है। उसकी लकड़ी से रोटी रांधना, उसकी लकड़ी से उजाला करना और उसी की लकड़ी से जाड़े की रातों में तापते हुए सो जाना। ठंड लगती है तो रात में उठकर फिर से आग सुलगा लेते हैं। जंगल हमें पालता-पोसता है, तो हम उसे भी संभालते हैं। बरसात में घास व फसल जब घुटने-घुटने हरी हो जाती है तो हम नीलपी पूजते हैं। जब तक हम हंसिया से घास नहीं काट सकते, घास का पूला नहीं बांध सकते, सागौन के कोमल पत्ते नहीं तोड़ सकते यहां तक कि नई घास खाने वाले जानवरों का दूध नहीं पीते।

इस तरह से हम जंगल की गोद और 'मोटली माई' (नर्मदा) के पेट में रहते हैं। मोटी नदी के गीत गाकर हम देव पूजते हैं। ये गीत नवाई और दिवासा के त्यौहारों पर गाए जाते हैं - ये हमें बताते हैं कि किस तरह से दुनिया बनी, मानव जाति कैसे पैदा हुई और मोटी नर्मदा कहां से आई। नर्मदा, उसके पेट में रहने वालों को बहुत सुख देती है। उसके पानी में ढेरों मछलियां हैं - खरही, मोइणी, घाघरा, लगन, टुकुन, तुमेण, तेपरो व अन्य तरह-तरह की मछलियां। चिवला की भाजी भी 'मोटी' नर्मदा से मिलती है। ये मछलियां और भाजी खाकर हम जीते हैं। हफ्ते में दो-तीन दिन हम मछली खाते हैं। हमारे घर में कभी मेहमान आते हैं तो हम चट से नदी जाकर मछली पकड़ कर लाते हैं। दूसरी क्या सब्जी है - मछली की तरकारी ही रांध देते हैं। बरसात में नदी खुद ही हमारे घरों तक लकड़ी पहुंचाती है। पीछे से नदी के साथ मिट्टी बहकर आती है जो रेत पर जम जाती है। जाड़े में इसी मिट्टी पर हम मक्का, दादरा-जुआर और गेहूं पकाते हैं - तरबूज और खरबूज की बाड़ी लगाते हैं, उसकी रेत पर हमारे बच्चे खेलते हैं - उसके पानी में नहाते, तैरते हैं। हमारे जानवर नर्मदा का पानी पीते हैं। सारे खुद्री-नाले गर्मी में सूख जाते है लेकिन नर्मदा कभी नहीं सूखती। हमारी औरतें नदी से पानी भरकर लाती हैं। पीढ़ियों से यहां रहने वाले हम लोगों का इस मोटली नदी नर्मदा और उसके पास के जंगलों पर कोई हक है या नहीं? उन हकों को आप सरकारी लोग पहचानते हो या नहीं? आप शहरी लोग शहर में अलग-अलग घरों में रहते हो। एक-दूसरे के सुख-दुख देखते तक नहीं - लेकिन हम तो सगे-संबंधियों पर ही जीते हैं। हम सब मिलकर 'लाह' (सामूहिक श्रम) करके एक दिन में घर खड़ा कर देते हैं, खेत की निदाई कर देते हैं, कोई भी बड़ा-छोटा काम पूरा कर देते हैं। 'लाह' में एक घर खिलाता है तो बाकी लोग मिलकर उसका काम कर देते हैं। 'पड़जीया' की रीति में हम भोजन नहीं खिलाते बल्कि आपसी समझ से काम होता है। आज मेरे घर 'पड़जीया' है तो कल तुम्हारे यहां 'पड़जीया'। एक साल में हम कम-से-कम सौ दिन का सामूहिक श्रम करते हैं। गुजरात में हम 'लाह' बुलाएंगे तो कौन आएगा? क्या बड़े-बड़े पाटीदार आकर, हमारे खेत नींदेगे या हमारे घर खड़े करेंगे?

हमारे यहां शादी और श्राद्ध में सब मिलकर खर्चा उठाते हैं - दहेज इकट्ठा करते हैं, भेंट देते हैं, लकड़ी-पत्तल लाते हैं। हमारे गांव में लड़ाई-झगड़े होते हैं तो पड़ोसी गांव के बुजुर्ग पंचायत बैठाकर झगड़ा तोड़ देते हैं। हम उजड़कर जाएंगे तो हमारे ब्याह और श्राद्ध कैसे होंगे, झगड़े तोड़कर मेल कराने के लिए भी कौन आएगा, हमारे यहां अगर बीज खत्म हो जाए, बैल मर जाए या कोई भी विपदा आ जाए तो सब सगे-संबंधी हमें मदद करते हैं जो कि पूरे परगने में फैले हुए हैं। लेकिन वहां एक साल भी बरसात न हो, या बीज खत्म हो जाए या बैल मर जाए तो हमको दूसरा बैल या थोड़ा-बहुत बीज कौन देने वाला है? हमारी लड़कियों और बहनों के ससुराल पास ही हैं, हमारी पत्नियों का पीहर भी पास ही है। हम उजड़कर जाएंगे तो उनसे दुबारा कभी भेंट नहीं होगी। वे हमारे लिए एक तरह से मर जाएंगे। हमारे गांव की औरतें तो हमें धमकी देती हैं कि 'पति तो हम छोड़ने के लिए तैयार हैं। पति तो दूसरा भी मिल जाएगा। लेकिन दूसरे मां-बाप कहां से मिलेंगे?' हम यहां से जाने के लिए तैयार नहीं हैं। वहां हमारे साथ कोई दुख-दमन हो तो किसको बताएंगे? मोटर किराया देकर आप तो हमें यहां भेजने से रहे।

हमारे यहां गांव में इतना मेल-जोल कैसे है? क्योंकि हमारी आपस की समझ है, एक-दूसरे को मदद कर सकते हैं, और सभी लगभग एक-बराबर की स्थिति में हैं। बगैर जमीन वाला कोई इक्का-दुक्का हो तो हो वरना सभी के पास जमीन है। कोई भी ज्यादा जमीन वाला नहीं है, सभी के पास थोड़ी-थोड़ी जमीन है। हम गुजरात जाएंगे, तो हमें बड़े-बड़े जमीन वाले, पाटीदार और बनियों के साथ रहना होगा। वे हमें दबाएंगे भी। गुजरात में तो वहीं रहने वाले आदिवासियों की जमीनें वहां के बड़े लोगों ने तीस-चालीस साल पहले छीन ली थीं। आज भी छीन रहे हैं। पहले तो वहां भी आदिवासियों की बस्ती ही थी। फिर हम तो अनजाने लोग हैं। हमें न तो वहां की बोली आती है, न ही कायदा-कानून। संपर्क और राज भी उन्हीं बड़े लोगों का है। इतनी लागत की खेती यदि हमसे न हो तो पैसे के लिए हमें उनके पास अपनी जमीन गिरवी रखनी होगी। धीरे-धीरे वे हमारी जमीनें छीन लेंगे। वहां के खास रहने वालों की छीन ली है तो हमारी कैसे छोड़ेंगे? फिर हम अहमदाबाद या गांधीनगर के चक्कर लगाते रहेंगे पर दूसरी जमीन कौन देने वाला है? यह बात जान लो कि यहां हमारे बाप-दादा की जमीन है जिस पर हमारा हक है। यह छूट जाए तो हमारे हाथ गैती-फावड़ा-तगाड़ी ही लगेगा - दूसरा कुछ नहीं।

जनम हमारा इसी गांव में हुआ है - हमारा 'नरा' यहीं गड़ा है। समझो हम यहीं से उपजे हैं। हमारे गांव की हद, देव-धामी सभी यहीं हैं। हमारे पूर्वजों ने 'पालिया' 'गाता' 'हिंडला' (झूले) सभी यहां हैं। हम काला राणों, राजा फान्टो, वेला ठाकुर, इंदी राजा पूजने वाले लोग हैं। आई-खेड़ा, खेडू बाई सभी को हम पूजते हैं। हमारी बड़ी देवी है राणी काजल। उनका व कुंबाई व कुंडू राणो का देवस्थल पास के मथवाड़ गांव में है। इन्हें छोडकर जाएंगे तो हमें देवता कहां से मिलेंगे? हमारे त्यौहार में इंदल, दिवासा, दिवाली में पूरे परगना के लोग आते हैं। वहां कौन आएगा? भगोरिया में हम सभी हाट में जाते हैं - वहां हमारे लड़के-लड़कियां आपस में जोड़ी बनाते हैं। गुजरात में ऐसा होगा क्या? आप कहते हैं कि गुजरात की जमीन ले लो। 'नेता' तुमको भड़का रहे हैं। उनके पीछे मत पड़ो। हम उनके पीछे नहीं पड़ रहे हैं। हम तो अपनी जमीन, अपने जंगल, नदी और अपने डोर-डांगर के पीछे पड़ रहे हैं।

आप कहते हैं कि मुआवजा ले लो। सरकार किस चीज का मुआवजा दे रही है? हमारे घर का, हमारे खेत और खेत की मेड़ पर उगे झाड़ का? लेकिन हम सिर्फ इसी से तो नहीं जीते। आप क्या हमें हमारे जंगल का मुआवजा देने वाले हो? उसमें सागौन-बांस-उम्बर-तेंदू-सलाई-महुआ-आंजन-खाखरा कई तरीके के झाड़ हैं। उसकी पत्ती, लकड़ी, तना और फल का हम उपयोग करते हैं और बेंचते भी हैं। इसका कितना मुआवजा होगा? या हमारी मोटी माई नर्मदा का मुआवजा देने वाले हो? उसकी मछली, पानी, उसमें आने वाली भाजी, उसके तट पर रहने वाले सुख - इनका क्या मोल है? क्या हमारे जानवर और उनके लिए यहां मिलने वाले चारे-पानी का भी मुआवजा दोगे? हमारे खेतों का मुआवजा तुम किस तरह से आंकते हो? यह जमीन हमने खरीदी नहीं है। इसे तो हमारे पूर्वजों ने जंगल साफ करके बनाया है। इसका क्या भाव लगाओगे? हमारे देव, जात, सगे-संबंधियों के साथ-सहारे का क्या मोल होगा?

आप कहते हैं कि गुजरात जाओ- वहां तुम्हारा भला होगा, विकास होगा। पाठशाला होगी, तो तुम्हारे बच्चे पढ़-लिख जाएंगे। सड़क होगी तो बस में बैठकर घूमना आसान हो जाएगा। वहां बिजली होगी। बीमारी में डाक्टर मिलेगा। हमें भी यह सब चाहिए, पर अपने गांव में। अपने गांव से उजड़ने की कीमत पर नहीं। हमारी औरतें मुर्गा बोलते ही घट्टी पीसना शुरू कर देती हैं। बिजली आएगी तो मोटर-चक्की से पिसवाएंगे। हैंड-पंप होगा तो बरसात में नदी का लाल पानी नहीं पीना पड़ेगा। पाठशाला होगी तो हमारे बच्चे भी पढ़-लिख लेंगे। बिजली होगी तो नदी का पानी लाकर जाड़े में भी फसल लेंगे। यदि आपको सिंचाई के लिए मोटर देना है - तो हमारे इसी गांव में क्यों नहीं देते? चालीस-पचास साल हो गए हमारा राज आया है लेकिन अब तक हमें यह सब कुछ क्यों नहीं दिया गया? इसे पाने के लिए हमें गुजरात क्यों जाना पड़ेगा? दूसरे गांव में हमारे भाई-बंद हर साल जाड़े में मजदूरी करने गुजरात के सूरत, नवसारी जाते हैं। क्या उनके बच्चों को कभी पढ़ने को मिलता है? क्या उनको बिजली मिलती है? वे तो बिल्डिंग बांधते हैं और खुद सड़क पर सोते हैं। सब जगह आदिवासियों का यही हाल हो रहा है। बरगी बांध के लोग अभी तक भटक रहे हैं। सरकार ने हमसे न पूछा न पाछा और भोपाल-दिल्ली-अहमदाबाद में बैठ कर हमारी जिंदगी का फैसला ले लिया। क्या हम किसान - आदिवासियों-भील-भिलाला-मांकर को मनुष्यों में नहीं गिना जाता है?

हम तो 'नहीं उजड़ेंगे' तय करके लड़ रहे हैं लेकिन जो चंद लोग उजड़ने को तैयार हैं - उन्हें भी आप जबरदस्ती गुजरात भेज रहे हो। आज तक आपने मध्यप्रदेश में एक इंच जमीन नहीं दिखाई। कहते हैं कि यहां कि पुनर्वास नीति गुजरात से कमजोर है। इसीलिए गुजरात जाओ। ये लोग मध्यप्रदेश की प्रजा कहलाते हैं कि गुजरात की?

हम सब आदिवासी लोग जलसिंधी गांव में डूबने वाले हैं। आपकी गुजरात की जमीनें हमें मंजूर नहीं हैं। आपका मुआवजा हमें मंजूर नहीं है। इस नर्मदा के पेट में हम पैदा हुए हैं, इसकी गोद में हमें मरने में क्या डर? आप देखिएगा - अब तो गुजरात ने बांध के दरवाजे बंद कर दिए हैं - बरसात के पहले गर्मी में ही हमारे गांव में पानी भर जाएगा। हम पानी में अपनी जीवन समर्पण करेंगे।

अंगूठे का निशान
(बाबा महारिया)
गांव जलसिंधी,
तहसील अलीराजपुर,
जिला झाबुआ, (मध्यप्रदेश) ४५७८८७